जैन धर्म में तप का स्वरूप

• घोरतपस्वी मुनि अमृतचंद्र 'प्रभाकर'

अनादिकालिक कर्मों से आबद्ध आत्मा मलिन हो जाता है। अत: ज्ञानी पुरुषों ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार अनेक संशुद्धि के उपाय प्रस्तुत किये हैं। जैन धर्म में 'तप' को आत्मशुद्धि का महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। जैसे-सुवर्ण अग्नि में तप कर, विशुद्ध होकर अत्यधिक चमक प्राप्त करता है वैसे ही तप रूपी अग्नि से परिष्कृत होकर मानव का व्यक्तित्व निखरता है, आत्मा का सौंदर्य झलकता है। 'तप' वह प्रक्रिया है, जिससे मानव स्वरूप को पाने के लिये अग्रसर होता है तथा उसे सहज रूप में प्राप्त भी कर लेता है।

जैन धर्म में तप का विश्लेषण अतीव विशद रूप में हुआ है जिसका संक्षिप्त स्वरूप इस लघुनिबंध के माध्यम से प्रस्तुत करने का मेरा प्रयास है-।

तप की व्याख्यायें

'तप' शब्द तप् तपने धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है-तपाना। तपना। 'तप' शब्द की व्याख्यायें अनेक आचार्यों ने की हैं। जैनागमों के प्रसिद्ध चूर्णिकार जिनदास गणीमहत्तर ने तप की व्युत्पत्तिजन्य परिभाषा करते हुए कहा है-।

तप्यते अणेण पावं कम्मिमिति तवो?[1]

अर्थात् जिस साधना से दुष्कृत कर्मों का क्षय होता है- उसे तप कहते हैं।

आचार्य अभयदेवसूरि ने 'तप' का निरुक्तिलक्ष्य अर्थ प्रस्तुत किया है-।

रसरुधिमांस में दोऽस्थि गज्जाशुक्राण्यनेन तप्यंते कर्माणि वाडशुभानि इत्यतस्तपो नाम निरुक्त:।[2]

जिस साधना से शरीर के रस, रक्त, मांस हड्डियाँ, मज्जा शुक्र आदि तप जाते हैं, सूखे जाते है, वह तप है तथा जिसके द्वारा अशुभ कर्म जल जाते है, वह 'तप' कहलाता है।

आचार्य मलय गिरि ने कहा है-।

तापयति अष्टप्रकार कर्म - इति तप:।[3]

---

१. निशीथ चर्णि ४६

२. स्थानांग वृत्ति - ५

३. आवश्यक मलयगिरी, खण्ड - २ अध्ययन - १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है, उन्हें क्षीण करता है - उसे तप कहते है।

उमास्वाति ने कहा है-।

इच्छा निरोधस्तपः

इच्छाओं पर नियंत्रण करना तप है।

इस प्रकार तप की निरुक्तियों एवं परिभाषाओं के परिशीलन से ज्ञात होता है कि 'तप' वह साधना है जिसके द्वारा मनुष्य इंद्रिय तथा मन को नियंत्रित करके, विषयों की तरफ से पराङ्मुख करके, अंतर्मुखी बना देता है जिससे आत्म दर्शन सुलभ हो जाता है।

तप का महत्व

श्रमण संस्कृति तप प्रधान संस्कृति है। श्रमणशब्द की व्युत्पत्ति भी तप परक है-।

श्राम्यति तपसा खिद्यति इति कृत्वा श्रमणों वाच्यः।

अर्थात् जो श्रम करता है। तपस्या करता है वही 'श्रमण' कहलाता है।

उत्तराध्ययन में तप के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है-।

तवो जोई जीवो जोइठाणं,
जोगा सुया सरीरं करिसंग।
कम्मेहा संयमजोग संती
होगं हुषामि इसिण पसत्थं॥

अर्थात् तप ज्योति है, अग्नि है। जीव ज्योति स्थानिक है। मन, वचन, काया के योग-स्त्रुवा-आहुति देने की कड़छी है, शरीर कारीषांग = अग्निप्रज्वलित करने का साधन है, कर्म जलाये जाने वाला ईधन है, संयम योग शक्ति पाठ है। मैं इस प्रकार का यज्ञ करता हूँ, जिसे ऋषियों ने श्रेष्ठ बताया है।

आचारा ङ्ग में तप को कर्ममूल शोधक बताते हुए कहा गया है।

जहू खलु मइलं वत्थं सुज्झए उदगाइएहि दव्वेहि।
एवं भावुवहाणेणं सुज्झए कम्मट्ठविहं॥

जिस प्रकार जल आदि शोधक द्रव्यों से मलिन वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक तप साधना द्वारा आत्मा ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म मल से मुक्त हो जाता है।

तप का वर्गीकरण

---

४. सूत्रकृतांग १/१६ कीलीका आचार्य शीलांक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन को सुविकसित एवं परिपूर्ण बनाने के लिये तप की महती आवश्यकता है। तप में वह असीम शक्ति है जिससे जीवन-जीवन बनता है। तप के अनेक भेद हो सकते हैं किंतु सूक्ष्म रूप से दो प्रकार में विभाजित किया गया है।

सो तवो दुविले वुत्तो बहिरब्भंतरो तहा।[5]

तप दो प्रकार के होते है।

१. बाह्य तप २. आभ्यंतर तप

बाह्य तप

जिस तपः साधना का सम्बन्ध शरीर से अधिक प्रतीत होता है उसे बाह्य तप कहते है। जैसे - उपवास, प्रत्याख्यान आदि। बाह्य तप ६ प्रकार का है-। १. अनशन, २. ऊनोदरी, ३. भिक्षाचरी, ४. रसपरित्याग, ५. कायक्लेश, ६. संलीनता।

आभ्यंतर तपः-

आभ्यतंर तप का सीधा संबंध आत्मा से होता है। इसके भी ६ भेद स्वीकार किये गये है। १. प्रायश्चित, २. विनय, २. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६. कायोत्सर्ग।

कुछ लोग ऐसा सोचते है कि बाह्य तप गौण है परंतु यह नितांत भ्रांत धारणा है, निर्मूल विचारणा है क्योंकि बाह्य तप की दृढ़ता न होने पर आभ्यंतर तप सहज संभाव्य नहीं है और हाँ यह भी सत्य है कि आभ्यंतर तप के अभाव में बाह्य तप की व्यर्थता स्पष्ट है।

* * * * *

---

५. उत्तरा नन्यंगन ३/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org